॥ श्रीहरिः ॥ 1278

दशमहाविद्या



गीताप्रेस, गोरखपुर



१-काली

दस महाविद्याओंमें काली प्रथम हैं। महाभागवतके अनुसार महाकाली ही मुख्य हैं और उन्हींके उग्र और सौम्य दो रूपोंमें अनेक रूप धारण करनेवाली दस महाविद्याएँ हैं। विद्यापति भगवान् शिवकी शक्तियाँ ये महाविद्याएँ अनन्त सिद्धियाँ प्रदान करनेमें समर्थ हैं। दार्शनिक दृष्टिसे भी कालतत्त्वकी प्रधानता सर्वोपरि है। इसलिये महाकाली या काली ही समस्त विद्याओंकी आदि हैं अर्थात् उनकी विद्यामय विभूतियाँ ही महाविद्याएँ हैं। ऐसा लगता है कि महाकालकी प्रियतमा काली ही अपने दक्षिण और वाम रूपोंमें दस महाविद्याओंके नामसे विख्यात हुईं। बृहन्नीलतन्त्रमें कहा गया है कि रक्त और कृष्णाभेदसे काली ही दो रूपोंमें अधिष्ठित हैं। कृष्णाका नाम 'दक्षिणा' और रक्तवर्णाका नाम 'सुन्दरी' है।

कालिकापुराणमें कथा आती है कि एक बार हिमालयपर अवस्थित मतंग मुनिके आश्रममें जाकर देवताओंने महामायाकी स्तुति की। स्तुतिसे प्रसन्न होकर मतंग-वनिताके रूपमें भगवतीने देवताओंको दर्शन दिया और पूछा कि तुमलोग किसकी स्तुति कर रहे हो। उसी समय देवीके शरीरसे काले पहाड़के समान वर्णवाली एक और दिव्य नारीका प्राकट्य हुआ। उस महातेजस्विनीने स्वयं ही देवताओंकी ओरसे उत्तर दिया कि 'ये लोग मेरा ही स्तवन कर रहे हैं।' वे काजलके समान कृष्णा थीं, इसीलिये उनका नाम 'काली' पड़ा।

दुर्गासप्तशतीके अनुसार एक बार शुम्भ-निशुम्भके अत्याचारसे व्यथित होकर देवताओंने हिमालयपर जाकर देवीसूक्तसे देवीकी स्तुति की, तब गौरीकी देहसे कौशिकीका प्राकट्य हुआ। कौशिकीके अलग होते ही अम्बा पार्वतीका स्वरूप कृष्ण हो गया, जो 'काली' नामसे विख्यात हुईं। कालीको नीलरूपा होनेके कारण तारा भी कहते हैं। नारद-पाञ्चरात्रके अनुसार एक बार कालीके मनमें आया कि वे पुनः गौरी हो जायँ। यह सोचकर वे अन्तर्धान हो गयीं। शिवजीने नारदजीसे उनका पता पूछा। नारदजीने उनसे सुमेरुके उत्तरमें देवीके प्रत्यक्ष उपस्थित होनेकी बात कही। शिवजीकी प्रेरणासे नारदजी वहाँ गये। उन्होंने देवीसे शिवजीके साथ विवाहका प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव सुनकर देवी क्रुद्ध हो गयीं और उनकी देहसे एक अन्य षोडशी विग्रह प्रकट हुआ और उससे छायाविग्रह त्रिपुरभैरवीका प्राकट्य हुआ।

कालीकी उपासनामें सम्प्रदायगत भेद है। प्रायः दो रूपोंमें इनकी उपासनाका प्रचलन है। भव-बन्धन-मोचनमें कालीकी उपासना सर्वोत्कृष्ट कही जाती है। शक्ति-साधनाके दो पीठोंमें कालीकी उपासना श्याम-पीठपर करनेयोग्य है। भक्तिमार्गमें तो किसी भी रूपमें उन महामायाकी उपासना फलप्रदा है, पर सिद्धिके लिये उनकी उपासना वीरभावसे की जाती है। साधनाके द्वारा जब अहंता, ममता और भेद-बुद्धिका नाश होकर साधकमें पूर्ण शिशुत्वका उदय हो जाता है, तब कालीका श्रीविग्रह साधकके समक्ष प्रकट हो जाता है। उस समय भगवती कालीकी छवि अवर्णनीय होती है। कज्जलके पहाड़के समान, दिग्वसना, मुक्तकुन्तला, शवपर आरूढ़, मुण्डमालाधारिणी भगवती कालीका प्रत्यक्ष दर्शन साधकको कृतार्थ कर देता है। तान्त्रिक-मार्गमें यद्यपि कालीकी उपासना दीक्षागम्य है, तथापि अनन्य शरणागतिके द्वारा उनकी कृपा किसीको भी प्राप्त हो सकती है। मूर्ति, मन्त्र अथवा गुरुद्वारा उपदिष्ट किसी भी आधारपर भक्तिभावसे, मन्त्र-जप, पूजा, होम और पुरश्चरण करनेसे भगवती काली प्रसन्न हो जाती हैं। उनकी प्रसन्नतासे साधकको सहज ही सम्पूर्ण अभीष्टोंकी प्राप्ति हो जाती है।

1278 1 / A



1278 1 / B

२-तारा

भगवती कालीको ही नीलरूपा होनेके कारण तारा भी कहा गया है। वचनान्तरसे तारा नामका रहस्य यह भी है कि ये सर्वदा मोक्ष देनेवाली, तारनेवाली हैं, इसलिये इन्हें तारा कहा जाता है। महाविद्याओंमें ये द्वितीय स्थानपर परिगणित हैं। अनायास ही वाक्शक्ति प्रदान करनेमें समर्थ हैं, इसलिये इन्हें नीलसरस्वती भी कहते हैं। भयंकर विपत्तियोंसे भक्तोंकी रक्षा करती हैं, इसलिये उग्रतारा हैं। बृहन्नील-तन्त्रादि ग्रन्थोंमें भगवती ताराके स्वरूपकी विशेष चर्चा है। हयग्रीवका वध करनेके लिये इन्हें नील-विग्रह प्राप्त हुआ था। ये शवरूप शिवपर प्रत्यालीढ़ मुद्रामें आरूढ़ हैं। भगवती तारा नीलवर्णवाली, नीलकमलोंके समान तीन नेत्रोंवाली तथा हाथोंमें कैंची, कपाल, कमल और खड्ग धारण करनेवाली हैं। ये व्याघ्रचर्मसे विभूषिता तथा कण्ठमें मुण्डमाला धारण करनेवाली हैं।

शत्रुनाश, वाक्-शक्तिकी प्राप्ति तथा भोग-मोक्षकी प्राप्तिके लिये तारा अथवा उग्रताराकी साधना की जाती है। रात्रिदेवीकी स्वरूपा शक्ति तारा महाविद्याओंमें अद्भुत प्रभाववाली और सिद्धिकी अधिष्ठात्री देवी कही गयी हैं। भगवती ताराके तीन रूप हैं—तारा, एकजटा और नीलसरस्वती। तीनों रूपोंके रहस्य, कार्य-कलाप तथा ध्यान परस्पर भिन्न हैं, किन्तु भिन्न होते हुए सबकी शक्ति समान और एक है। भगवती ताराकी उपासना मुख्यरूपसे तन्त्रोक्त पद्धतिसे होती है, जिसे आगमोक्त पद्धति भी कहते हैं। इनकी उपासनासे सामान्य व्यक्ति भी बृहस्पतिके समान विद्वान् हो जाता है।

भारतमें सर्वप्रथम महर्षि वसिष्ठने ताराकी आराधना की थी। इसलिये ताराको वसिष्ठाराधिता तारा भी कहा जाता है। वसिष्ठने पहले भगवती ताराकी आराधना वैदिक रीतिसे करनी प्रारम्भ की, जो सफल न हो सकी। उन्हें अदृश्यशक्तिसे संकेत मिला कि वे तान्त्रिक-पद्धतिके द्वारा जिसे 'चिनाचारा' कहा जाता है, उपासना करें। जब वसिष्ठने तान्त्रिक पद्धतिका आश्रय लिया, तब उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। यह कथा 'आचार' तन्त्रमें वसिष्ठ मुनिकी आराधना उपाख्यानमें वर्णित है। इससे यह सिद्ध होता है कि पहले चीन, तिब्बत, लद्दाख आदिमें ताराकी उपासना प्रचलित थी।

ताराका प्रादुर्भाव मेरु-पर्वतके पश्चिम भागमें 'चोलना' नामकी नदीके या चोलत सरोवरके तटपर हुआ था, जैसा कि स्वतन्त्रतन्त्रमें वर्णित है—

मेरोः पश्चिमकूले नु चोत्रताख्यो ह्रदो महान्।
तत्र जज्ञे स्वयं तारा देवी नीलसरस्वती॥

'महाकाल-संहिता'के काम-कलाखण्डमें तारा-रहस्य वर्णित है, जिसमें तारारात्रिमें ताराकी उपासनाका विशेष महत्त्व है। चैत्र-शुक्ल नवमीकी रात्रि 'तारारात्रि' कहलाती है—

चैत्रे मासि नवम्यां तु शुक्लपक्षे तु भूपते।
क्रोधरात्रिर्महेशानि तारारूपा भविष्यति॥ (पुरश्चर्यार्णव भाग-३)

बिहारके सहरसा जिलेमें प्रसिद्ध 'महिषी' ग्राममें उग्रताराका सिद्धपीठ विद्यमान है। वहाँ तारा, एकजटा तथा नीलसरस्वतीकी तीनों मूर्तियाँ एक साथ हैं। मध्यमें बड़ी मूर्ति तथा दोनों तरफ छोटी मूर्तियाँ हैं। कहा जाता है कि महर्षि वसिष्ठने यहीं ताराकी उपासना करके सिद्धि प्राप्त की थी। तन्त्रशास्त्रके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'महाकाल-संहिता'के गुह्य-काली-खण्डमें महाविद्याओंकी उपासनाका विस्तृत वर्णन है, उसके अनुसार ताराका रहस्य अत्यन्त चमत्कारजनक है।



३-छिन्नमस्ता

परिवर्तनशील जगत्का अधिपति कबन्ध है और उसकी शक्ति ही छिन्नमस्ता है। विश्वकी वृद्धि-ह्रास तो सदैव होती रहती है। जब ह्रासकी मात्रा कम और विकासकी मात्रा अधिक होती है, तब भुवनेश्वरीका प्राकट्य होता है। इसके विपरीत जब निर्गम अधिक और आगम कम होता है, तब छिन्नमस्ताका प्राधान्य होता है।

भगवती छिन्नमस्ताका स्वरूप अत्यन्त ही गोपनीय है। इसे कोई अधिकारी साधक ही जान सकता है। महाविद्याओंमें इनका तीसरा स्थान है। इनके प्रादुर्भावकी कथा इस प्रकार है—एक बार भगवती भवानी अपनी सहचरी जया और विजयाके साथ मन्दाकिनीमें स्नान करनेके लिये गयीं। स्नानोपरान्त क्षुधाग्निसे पीड़ित होकर वे कृष्णवर्णकी हो गयीं। उस समय उनकी सहचरियोंने भी उनसे कुछ भोजन करनेके लिये माँगा। देवीने उनसे कुछ समय प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। थोड़ी देर प्रतीक्षा करनेके बाद सहचरियोंने जब पुनः भोजनके लिये निवेदन किया, तब देवीने उनसे कुछ देर और प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। इसपर सहचरियोंने देवीसे विनम्र स्वरमें कहा कि 'माँ तो अपने शिशुओंको भूख लगनेपर अविलम्ब भोजन प्रदान करती है। आप हमारी उपेक्षा क्यों कर रही हैं?' अपने सहचरियोंके मधुर वचन सुनकर कृपामयी देवीने अपने खड्गसे अपना सिर काट दिया। कटा हुआ सिर देवीके बायें हाथमें आ गिरा और उनके कबन्धसे रक्तकी तीन धाराएँ प्रवाहित हुईं। वे दो धाराओंको अपनी दोनों सहचरियोंकी ओर प्रवाहित कर दीं, जिसे पीती हुई दोनों प्रसन्न होने लगीं और तीसरी धाराको देवी स्वयं पान करने लगीं। तभीसे देवी छिन्नमस्ताके नामसे प्रसिद्ध हुईं।

ऐसा विधान है कि आधी रात अर्थात् चतुर्थ संध्याकालमें छिन्नमस्ताकी उपासनासे साधकको सरस्वती सिद्ध हो जाती हैं। शत्रु-विजय, समूह-स्तम्भन, राज्य-प्राप्ति और दुर्लभ मोक्ष-प्राप्तिके लिये छिन्नमस्ताकी उपासना अमोघ है। छिन्नमस्ताका आध्यात्मिक स्वरूप अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। छिन्न यज्ञशीर्षकी प्रतीक ये देवी श्वेतकमल-पीठपर खड़ी हैं। दिशाएँ ही इनके वस्त्र हैं। इनकी नाभिमें योनिचक्र है। कृष्ण (तम) और रक्त (रज) गुणोंकी देवियाँ इनकी सहचरियाँ हैं। ये अपना शीश काटकर भी जीवित हैं। यह अपने-आपमें पूर्ण अन्तर्मुखी साधनाका संकेत है।

विद्वानोंने इस कथामें सिद्धिकी चरम सीमाका निर्देश माना है। योगशास्त्रमें तीन ग्रन्थियाँ बतायी गयी हैं, जिनके भेदनके बाद योगीको पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है। इन्हें ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि तथा रुद्रग्रन्थि कहा गया है। मूलाधारमें ब्रह्मग्रन्थि, मणिपूरमें विष्णुग्रन्थि तथा आज्ञाचक्रमें रुद्रग्रन्थिका स्थान है। इन ग्रन्थियोंके भेदनसे ही अद्वैतानन्दकी प्राप्ति होती है। योगियोंका ऐसा अनुभव है कि मणिपूर चक्रके नीचेकी नाड़ियोंमें ही काम और रतिका मूल है, उसीपर छिन्ना महाशक्ति आरूढ़ है, इसका ऊर्ध्व प्रवाह होनेपर रुद्रग्रन्थिका भेदन होता है।

छिन्नमस्ताका वज्र वैरोचनी नाम शाक्तों, बौद्धों तथा जैनोंमें समान रूपसे प्रचलित है। देवीकी दोनों सहचरियाँ रजोगुण तथा तमोगुणकी प्रतीक हैं, कमल विश्वप्रपञ्च है और कामरति चिदानन्दकी स्थूलवृत्ति है। बृहदारण्यककी अश्वशिर-विद्या, शाक्तोंकी हयग्रीव विद्या तथा गाणपत्योंके छिन्नशीर्ष गणपतिका रहस्य भी छिन्नमस्तासे ही सम्बन्धित है। हिरण्यकशिपु, वैरोचन आदि छिन्नमस्ताके ही उपासक थे। इसीलिये इन्हें वज्र वैरोचनीया कहा गया है। वैरोचन अग्निको कहते हैं। अग्निके स्थान मणिपूरमें छिन्नमस्ताका ध्यान किया जाता है और वज्रानाड़ीमें इनका प्रवाह होनेसे इन्हें वज्र वैरोचनीया कहते हैं। श्रीभैरवतन्त्रमें कहा गया है कि इनकी आराधनासे साधक जीवभावसे मुक्त होकर शिवभावको प्राप्त कर लेता है।



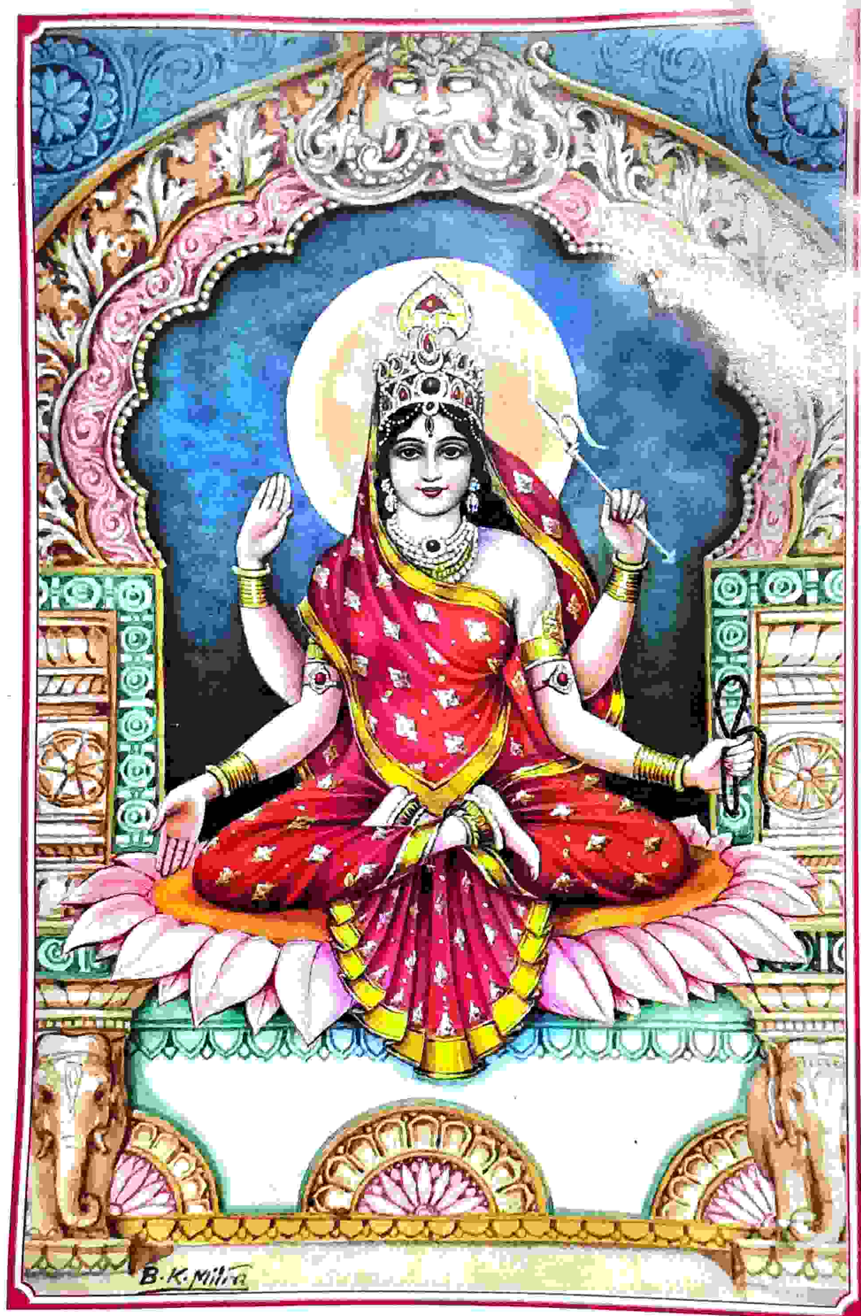
४-षोडशी

षोडशी माहेश्वरी शक्तिकी सबसे मनोहर श्रीविग्रहवाली सिद्ध देवी हैं। महाविद्याओंमें इनका चौथा स्थान है। सोलह अक्षरोंके मन्त्रवाली इन देवीकी अङ्गकान्ति उदीयमान सूर्यमण्डलकी आभाकी भाँति है। इनकी चार भुजाएँ एवं तीन नेत्र हैं। ये शान्तमुद्रामें लेटे हुए सदाशिवपर स्थित कमलके आसनपर आसीन हैं। इनके चारों हाथोंमें क्रमशः पाश, अङ्कुश, धनुष और बाण सुशोभित हैं। वर देनेके लिये सदा-सर्वदा तत्पर भगवतीका श्रीविग्रह सौम्य और हृदय दयासे आपूरित है। जो इनका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, उनमें और ईश्वरमें कोई भेद नहीं रह जाता है। वस्तुतः इनकी महिमा अवर्णनीय है। संसारके समस्त मन्त्र-तन्त्र इनकी आराधना करते हैं। वेद भी इनका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं। भक्तोंको ये प्रसन्न होकर सब कुछ दे देती हैं, अभीष्ट तो सीमित अर्थवाच्य है।

प्रशान्त हिरण्यगर्भ ही शिव हैं और उन्हींकी शक्ति षोडशी है। तन्त्रशास्त्रोंमें षोडशी देवीको पञ्चवक्त्र अर्थात् पाँच मुखोंवाली बताया गया है। चारों दिशाओंमें चार और एक ऊपरकी ओर मुख होनेसे इन्हें पञ्चवक्त्रा कहा जाता है। देवीके पाँचों मुख तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव अघोर और ईशान शिवके पाँचों रूपोंके प्रतीक हैं। पाँचों दिशाओंके रंग क्रमशः हरित, रक्त, धूम्र, नील और पीत होनेसे ये मुख भी उन्हीं रंगोंके हैं। देवीके दस हाथोंमें क्रमशः अभय, टंक, शूल, वज्र, पाश, खड्ग, अङ्कुश, घण्टा, नाग और अग्नि हैं। इनमें षोडश कलाएँ पूर्णरूपसे विकसित हैं, अतएव ये षोडशी कहलाती हैं।

षोडशीको श्रीविद्या भी माना जाता है। इनके ललिता, राज-राजेश्वरी, महात्रिपुरसुन्दरी, बालापञ्चदशी आदि अनेक नाम हैं। इन्हें आद्याशक्ति माना जाता है। अन्य विद्याएँ भोग या मोक्षमेंसे एक ही देती हैं। ये अपने उपासकको भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करती हैं। इनके स्थूल, सूक्ष्म, पर तथा तुरीय चार रूप हैं।

एक बार पराम्बा पार्वतीजीने भगवान् शिवसे पूछा—भगवन्! आपके द्वारा प्रकाशित तन्त्रशास्त्रकी साधनासे जीवके आधि-व्याधि, शोक-संताप, दीनता-हीनता तो दूर हो जायँगे, किन्तु गर्भवास और मरणके असह्य दुःखकी निवृत्ति तो इससे नहीं होगी। कृपा करके इस दुःखसे निवृत्ति और मोक्षपदकी प्राप्तिका कोई उपाय बताइये।' परम कल्याणमयी पराम्बाके अनुरोधपर भगवान् शंकरने षोडशी श्रीविद्या-साधना-प्रणालीको प्रकट किया। भगवान् शङ्कराचार्यने भी श्रीविद्याके रूपमें इन्हीं षोडशी देवीकी उपासना की थी। इसीलिये आज भी सभी शाङ्करपीठोंमें भगवती षोडशी राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरीकी श्रीयन्त्रके रूपमें आराधना चली आ रही है। भगवान् शङ्कराचार्यने सौन्दर्यलहरीमें षोडशी श्रीविद्याकी स्तुति करते हुए कहा है कि 'अमृतके समुद्रमें एक मणिका द्वीप है, जिसमें कल्पवृक्षोंकी बारी है, नवरत्नोंके नौ परकोटे हैं; उस वनमें चिन्तामणिसे निर्मित महलमें ब्रह्ममय सिंहासन है, जिसमें पञ्चकृत्यके देवता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर आसनके पाये हैं और सदाशिव फलक हैं। सदाशिवके नाभिसे निर्गत कमलपर विराजमान भगवती षोडशी त्रिपुरसुन्दरीका जो ध्यान करते हैं, वे धन्य हैं। भगवतीके प्रभावसे उन्हें भोग और मोक्ष दोनों सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं।' भैरवयामल तथा शक्तिलहरीमें इनकी उपासनाका विस्तृत परिचय मिलता है। दुर्वासा इनके परमाराधक थे। इनकी उपासना श्रीचक्रमें होती है।


B. K. Mitra

५-भुवनेश्वरी

देवीभागवतमें वर्णित मणिद्वीपकी अधिष्ठात्री देवी हृल्लेखा (ह्रीं) मन्त्रकी स्वरूपाशक्ति और सृष्टिक्रममें महालक्ष्मीस्वरूपा—आदिशक्ति भगवती भुवनेश्वरी भगवान् शिवके समस्त लीला-विलासकी सहचरी हैं। जगदम्बा भुवनेश्वरीका स्वरूप सौम्य और अंगकान्ति अरुण है। भक्तोंको अभय और समस्त सिद्धियाँ प्रदान करना इनका स्वाभाविक गुण है। दशमहाविद्याओंमें ये पाँचवें स्थानपर परिगणित हैं। देवीपुराणके अनुसार मूल प्रकृतिका दूसरा नाम ही भुवनेश्वरी है। ईश्वररात्रिमें जब ईश्वरके जगद्रूप व्यवहारका लोप हो जाता है, उस समय केवल ब्रह्म अपनी अव्यक्त प्रकृतिके साथ शेष रहता है, तब ईश्वररात्रिकी अधिष्ठात्री देवी भुवनेश्वरी कहलाती हैं। अंकुश और पाश इनके मुख्य आयुध हैं। अंकुश नियन्त्रणका प्रतीक है और पाश राग अथवा आसक्तिका प्रतीक है। इस प्रकार सर्वरूपा मूल प्रकृति ही भुवनेश्वरी हैं, जो विश्वको वमन करनेके कारण वामा, शिवमयी होनेसे ज्येष्ठा तथा कर्म-नियन्त्रण, फलदान और जीवोंको दण्डित करनेके कारण रौद्री कही जाती हैं। भगवान् शिवका वाम भाग ही भुवनेश्वरी कहलाता है। भुवनेश्वरीके संगसे ही भुवनेश्वर सदाशिवको सर्वेश होनेकी योग्यता प्राप्त होती है।

महानिर्वाणतन्त्रके अनुसार सम्पूर्ण महाविद्याएँ भगवती भुवनेश्वरीकी सेवामें सदा संलग्न रहती हैं। सात करोड़ महामन्त्र इनकी सदा आराधना करते हैं। दशमहाविद्याएँ ही दस सोपान हैं। काली तत्त्वसे निर्गत होकर कमला तत्त्वतककी दस स्थितियाँ हैं, जिनसे अव्यक्त भुवनेश्वरी व्यक्त होकर ब्रह्माण्डका रूप धारण कर सकती हैं तथा प्रलयमें कमलासे अर्थात् व्यक्त जगत्से क्रमशः लय होकर कालीरूपमें मूल प्रकृति बन जाती हैं। इसलिये इन्हें कालकी जन्मदात्री भी कहा जाता है।

दुर्गासप्तशतीके ग्यारहवें अध्यायके मंगलाचरणमें भी कहा गया है कि 'मैं भुवनेश्वरी देवीका ध्यान करता हूँ। उनके श्रीअंगोंकी शोभा प्रातःकालके सूर्यदेवके समान अरुणाभ है। उनके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है। तीन नेत्रोंसे युक्त देवीके मुखपर मुस्कानकी छटा छायी रहती है। उनके हाथोंमें पाश, अङ्कुश, वरद एवं अभय मुद्रा शोभा पाते हैं।

इस प्रकार बृहन्नीलतन्त्रकी यह धारणा पुराणोंके विवरणोंसे भी पुष्ट होती है कि प्रकारान्तरसे काली और भुवनेशी दोनोंमें अभेद है। अव्यक्त प्रकृति भुवनेश्वरी ही रक्तवर्णा काली हैं। देवी भागवतके अनुसार दुर्गम नामक दैत्यके अत्याचारसे संतप्त होकर देवताओं और ब्राह्मणोंने हिमालयपर सर्वकारणस्वरूपा भगवती भुवनेश्वरीकी ही आराधना की थी। उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवती भुवनेश्वरी तत्काल प्रकट हो गयीं। वे अपने हाथोंमें बाण, कमल-पुष्प तथा शाक-मूल लिये हुए थीं। उन्होंने अपने नेत्रोंसे अश्रुजलकी सहस्त्रों धाराएँ प्रकट कीं। इस जलसे भूमण्डलके सभी प्राणी तृप्त हो गये। समुद्रों तथा सरिताओंमें अगाध जल भर गया और समस्त औषधियाँ सिंच गयीं। अपने हाथमें लिये गये शाकों और फल-मूलसे प्राणियोंका पोषण करनेके कारण भगवती भुवनेश्वरी ही 'शताक्षी' तथा 'शाकम्भरी' नामसे विख्यात हुईं। इन्होंने ही दुर्गमासुरको युद्धमें मारकर उसके द्वारा अपहृत वेदोंको देवताओंको पुनः सौंपा था। उसके बाद भगवती भुवनेश्वरीका एक नाम दुर्गा प्रसिद्ध हुआ।

भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना पुत्र-प्राप्तिके लिये विशेष फलप्रदा है। रुद्रयामलमें इनका कवच, नीलसरस्वतीतन्त्रमें इनका हृदय तथा महातन्त्रार्णवमें इनका सहस्त्रनाम संकलित है।



६-त्रिपुरभैरवी

क्षीयमान विश्वके अधिष्ठान दक्षिणामूर्ति कालभैरव हैं। उनकी शक्ति ही त्रिपुरभैरवी है। ये ललिता या महात्रिपुरसुन्दरीकी रथवाहिनी हैं। ब्रह्माण्डपुराणमें इन्हें गुप्त योगिनियोंकी अधिष्ठात्री देवीके रूपमें चित्रित किया गया है। मत्स्यपुराणमें इनके त्रिपुरभैरवी, कोलेशभैरवी, रुद्रभैरवी, चैतन्यभैरवी तथा नित्याभैरवी आदि रूपोंका वर्णन प्राप्त होता है। इन्द्रियोंपर विजय और सर्वत्र उत्कर्षकी प्राप्तिहेतु त्रिपुरभैरवीकी उपासनाका वर्णन शास्त्रोंमें मिलता है। महाविद्याओंमें इनका छठा स्थान है। त्रिपुरभैरवीका मुख्य उपयोग घोर कर्ममें होता है।

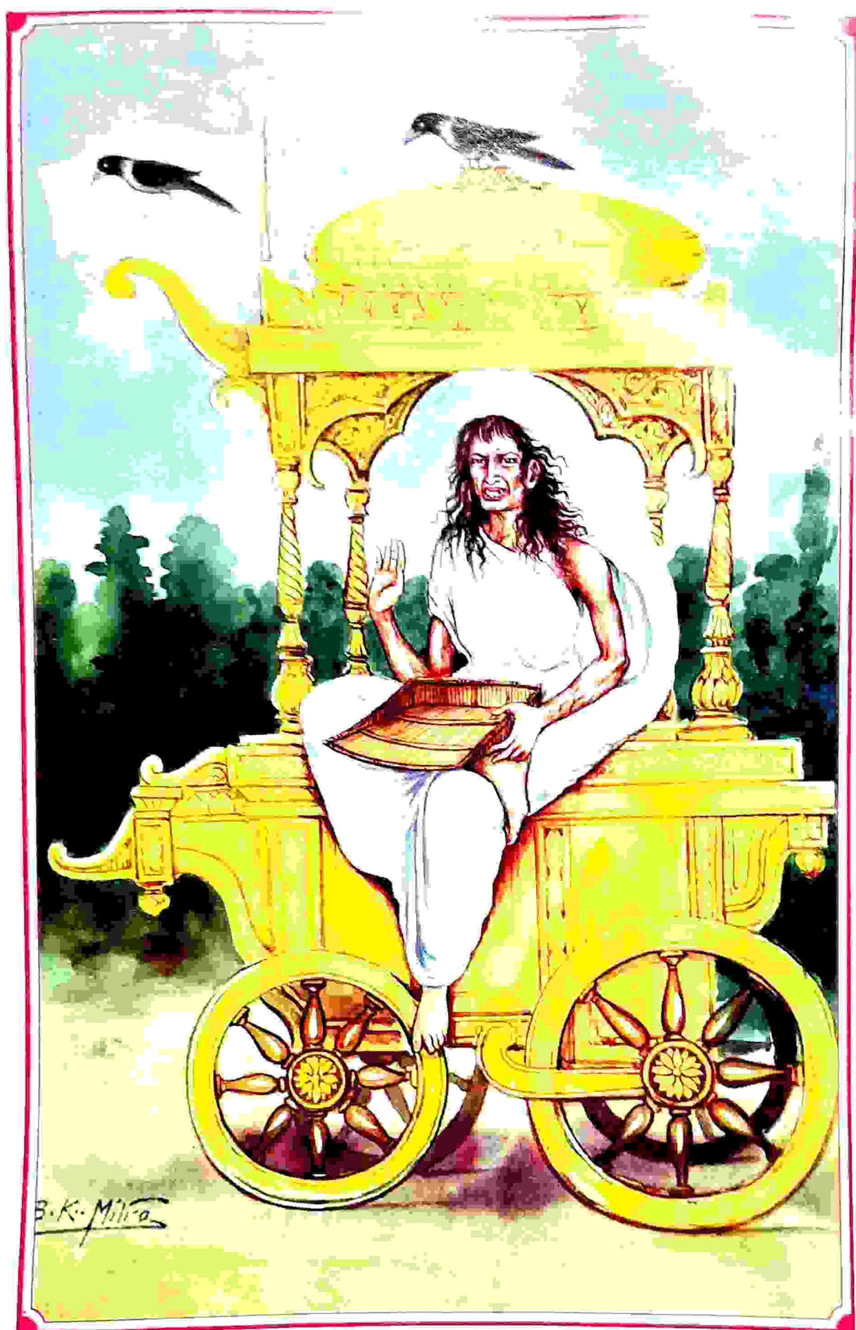
इनके ध्यानका उल्लेख दुर्गासप्तशतीके तीसरे अध्यायमें महिषासुर-वधके प्रसंगमें हुआ है। इनका रंग लाल है। ये लाल वस्त्र पहनती हैं, गलेमें मुण्डमाला धारण करती हैं और स्तनोंपर रक्त चन्दनका लेप करती हैं। ये अपने हाथोंमें जपमाला, पुस्तक तथा वर और अभय मुद्रा धारण करती हैं। ये कमलासनपर विराजमान हैं। भगवती त्रिपुरभैरवीने ही मधुपान करके महिषका हृदय विदीर्ण किया था। रुद्रयामल एवं भैरवीकुलसर्वस्वमें इनकी उपासना तथा कवचका उल्लेख मिलता है। संकटोंसे मुक्तिके लिये भी इनकी उपासना करनेका विधान है।

घोर कर्मके लिये कालकी विशेष अवस्थाजनित मानोंको शान्त कर देनेवाली शक्तिको ही त्रिपुरभैरवी कहा जाता है। इनका अरुण वर्ण विमर्शका प्रतीक है। इनके गलेमें सुशोभित मुण्डमाला ही वर्णमाला है। देवीके रक्तलिप्त पयोधर रजोगुणसम्पन्न सृष्टि-प्रक्रियाके प्रतीक हैं। अक्षजपमाला वर्णसमाम्नायकी प्रतीक है। पुस्तक ब्रह्मविद्या है, त्रिनेत्र वेदत्रयी हैं तथा स्मिति हास करुणा है।

आगम ग्रन्थोंके अनुसार त्रिपुरभैरवी एकाक्षररूप (प्रणव) हैं। इनसे सम्पूर्ण भुवन प्रकाशित हो रहे हैं तथा अन्तमें इन्हींमें लय हो जायँगे। 'अ' से लेकर विसर्गतक सोलह वर्ण भैरव कहलाते हैं तथा क से क्ष तकके वर्ण योनि अथवा भैरवी कहे जाते हैं। स्वच्छन्दोद्योतके प्रथम पटलमें इसपर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। यहाँपर त्रिपुरभैरवीको योगीश्वरीरूपमें उमा बतलाया गया है। इन्होंने भगवान् शंकरको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये कठोर तपस्या करनेका दृढ़ निर्णय लिया था। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी इनकी तपस्याको देखकर दंग रह गये। इससे सिद्ध होता है कि भगवान् शंकरकी उपासनामें निरत उमाका दृढ़निश्चयी स्वरूप ही त्रिपुरभैरवीका परिचायक है। त्रिपुरभैरवीकी स्तुतिमें कहा गया है कि भैरवी सूक्ष्म वाक् तथा जगत्के मूल कारणकी अधिष्ठात्री है।

त्रिपुरभैरवीके अनेक भेद हैं; जैसे सिद्धिभैरवी, चैतन्यभैरवी, भुवनेश्वरीभैरवी, कमलेश्वरीभैरवी, कामेश्वरीभैरवी, षट्कूटाभैरवी, नित्याभैरवी, कोलेशीभैरवी, रुद्रभैरवी आदि।

सिद्धिभैरवी उत्तराम्नाय पीठकी देवी हैं। नित्याभैरवी पश्चिमाम्नाय पीठकी देवी हैं, इनके उपासक स्वयं भगवान् शिव हैं। रुद्रभैरवी दक्षिणाम्नाय पीठकी देवी हैं। इनके उपासक भगवान् विष्णु हैं। त्रिपुरभैरवीके भैरव वटुक हैं। मुण्डमालातन्त्रानुसार त्रिपुरभैरवीको भगवान् नृसिंहकी अभिन्न शक्ति बताया गया है। सृष्टिमें परिवर्तन होता रहता है। इसका मूल कारण आकर्षण-विकर्षण है। इस सृष्टिके परिवर्तनमें क्षण-क्षणमें होनेवाली भावी क्रियाकी अधिष्ठातृशक्ति ही वैदिक दृष्टिसे त्रिपुरभैरवी कही जाती हैं। त्रिपुरभैरवीकी रात्रिका नाम कालरात्रि तथा भैरवका नाम कालभैरव है।


B.K. Mitra

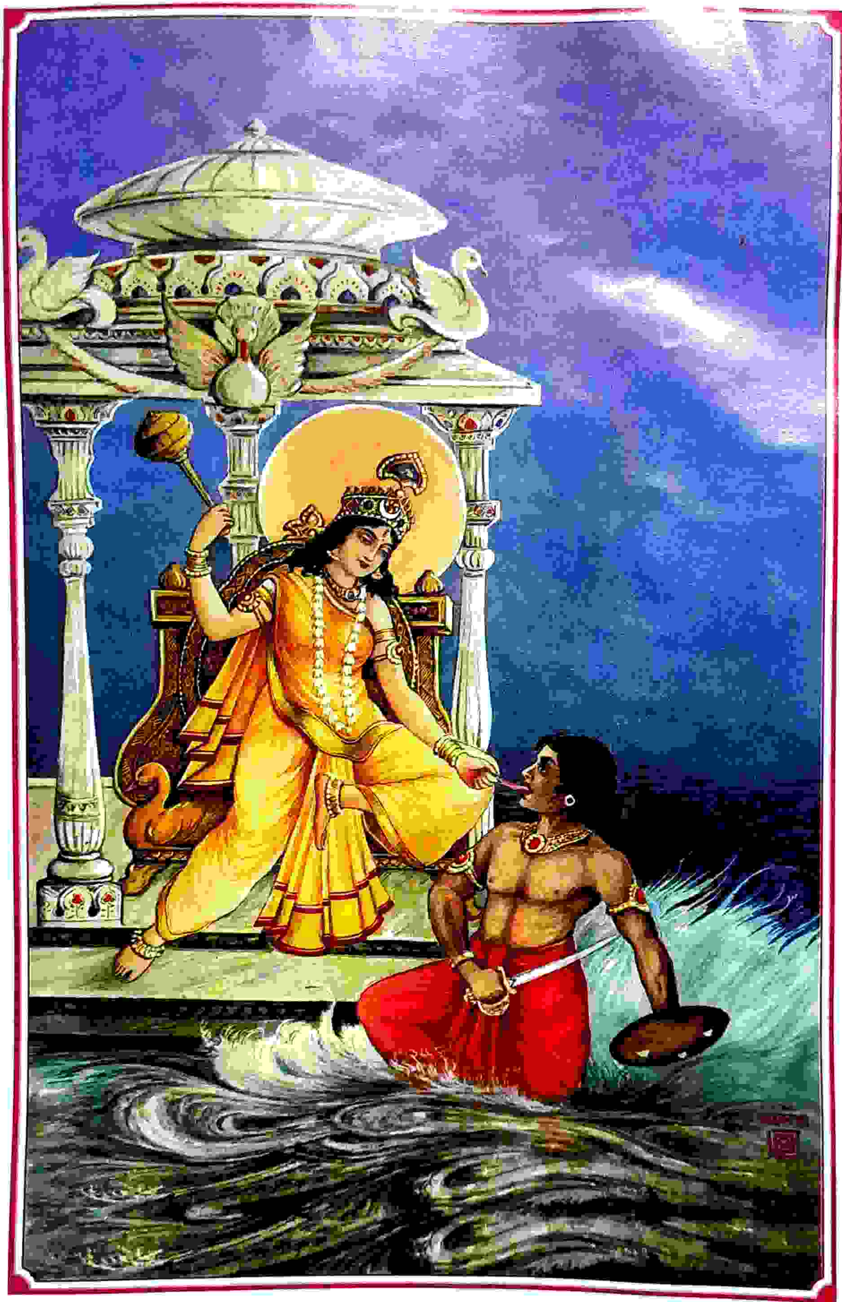
७-धूमावती

धूमावती देवी महाविद्याओंमें सातवें स्थानपर परिगणित हैं। इनके सन्दर्भमें कथा आती है कि एकबार भगवती पार्वती भगवान् शिवके साथ कैलास पर्वतपर बैठी हुई थीं। उन्होंने महादेवसे अपनी क्षुधाका निवारण करनेका निवेदन किया। कई बार माँगनेपर भी जब भगवान् शिवने उस ओर ध्यान नहीं दिया, तब उन्होंने महादेवको ही उठाकर निगल लिया। उनके शरीरसे धूमराशि निकली। शिवजीने उस समय पार्वतीसे कहा कि 'आपकी सुन्दर मूर्ति धूएँसे ढक जानेके कारण धूमावती या धूम्रा कही जायगी।' धूमावती महाशक्ति अकेली है तथा स्वयं नियन्त्रिका है। इसका कोई स्वामी नहीं है, इसलिये इसे विधवा कहा गया है। दुर्गासप्तशतीके अनुसार इन्होंने ही प्रतिज्ञा की थी 'जो मुझे युद्धमें जीत लेगा तथा मेरा गर्व दूर कर देगा, वही मेरा पति होगा। ऐसा कभी नहीं हुआ, अतः यह कुमारी हैं', ये धन या पतिरहित हैं अथवा अपने पति महादेवको निगल जानेके कारण विधवा हैं।

नारदपाञ्चरात्रके अनुसार इन्होंने अपने शरीरसे उग्रचण्डिकाको प्रकट किया था, जो सैकड़ों गीदड़ियोंकी तरह आवाज करनेवाली थी, शिवको निगलनेका तात्पर्य है, उनके स्वामित्वका निषेध। असुरोंके कच्चे माँससे इनकी अंगभूता शिवाएँ तृप्त हुईं, यही इनकी भूखका रहस्य है। इनके ध्यानमें इन्हें विवर्ण, चंचल, काले रंगवाली, मैले कपड़े धारण करनेवाली, खुले केशोंवाली, विधवा, काकध्वजवाले रथपर आरूढ़, हाथमें सूप धारण किये, भूख-प्याससे व्याकुल तथा निर्मम आँखोंवाली बताया गया है। स्वतन्त्रतन्त्रके अनुसार सतीने जब दक्षयज्ञमें योगाग्निके द्वारा अपने-आपको भस्म कर दिया, तब उस समय जो धुआँ उत्पन्न हुआ उससे धूमावती-विग्रहका प्राकट्य हुआ था।

धूमावतीकी उपासना विपत्ति-नाश, रोग-निवारण, युद्ध-जय, उच्चाटन तथा मारण आदिके लिये की जाती है। शाक्तप्रमोदमें कहा गया है कि इनके उपासकपर दुष्टाभिचारका प्रभाव नहीं पड़ता है। संसारमें रोग-दुःखके कारण चार देवता हैं। ज्वर, उन्माद तथा दाह रुद्रके कोपसे, मूर्च्छा, विकलाङ्गता यमके कोपसे, धूल, गठिया, लकवा, वरुणके कोपसे तथा शोक, कलह, क्षुधा, तृषा आदि निर्ऋतिके कोपसे होते हैं। शतपथब्राह्मणके अनुसार धूमावती और निर्ऋति एक हैं। यह लक्ष्मीकी ज्येष्ठा है, अतः ज्येष्ठा नक्षत्रमें उत्पन्न व्यक्ति जीवनभर दुःख भोगता है।

तन्त्र ग्रन्थोंके अनुसार धूमावती उग्रतारा ही हैं, जो धूम्रा होनेसे धूमावती कही जाती हैं। दुर्गासप्तशतीमें वाभ्रवी और तामसीनामसे इन्हींकी चर्चा की गयी है। ये प्रसन्न होकर रोग और शोकको नष्ट कर देती हैं तथा कुपित होनेपर समस्त सुखों और कामनाओंको नष्ट कर देती हैं। इनकी शरणागतिसे विपत्तिनाश तथा सम्पन्नता प्राप्त होती है। ऋग्वेदोक्त रात्रिसूक्तमें इन्हें 'सुतरा' कहा गया है। सुतराका अर्थ सुखपूर्वक तारनेयोग्य है। तारा या तारिणीको इनका पूर्वरूप बतलाया गया है। इसलिये आगमोंमें इन्हें अभाव और संकटको दूरकर सुख प्रदान करनेवाली भूति कहा गया है। धूमावती स्थिरप्रज्ञताकी प्रतीक है। इनका काकध्वज वासनाग्रस्त मन है, जो निरन्तर अतृप्त रहता है। जीवकी दीनावस्था भूख, प्यास, कलह, दरिद्रता आदि इसकी क्रियाएँ हैं, अर्थात् वेदकी शब्दावलीमें धूमावती कद्रु है, जो वृत्रासुर आदिको पैदा करती है।



८-वगलामुखी

व्यष्टिरूपमें शत्रुओंको नष्ट करनेकी इच्छा रखनेवाली तथा समष्टिरूपमें परमात्माकी संहार-शक्ति ही वगला है। पीताम्बराविद्याके नामसे विख्यात वगलामुखीकी साधना प्रायः शत्रुभयसे मुक्ति और वाक्-सिद्धिके लिये की जाती है। इनकी उपासनामें हरिद्रामाला, पीत-पुष्प एवं पीतवस्त्रका विधान है। महाविद्याओंमें इनका आठवाँ स्थान है। इनके ध्यानमें बताया गया है कि ये सुधासमुद्रके मध्यमें स्थित मणिमय मण्डपमें रत्नमय सिंहासनपर विराज रही हैं। ये पीतवर्णके वस्त्र, पीत आभूषण तथा पीले पुष्पोंकी ही माला धारण करती हैं। इनके एक हाथमें शत्रुकी जिह्वा और दूसरे हाथमें मुद्गर है।

स्वतन्त्रतन्त्रके अनुसार भगवती वगलामुखीके प्रादुर्भावकी कथा इस प्रकार है—सत्ययुगमें सम्पूर्ण जगत्को नष्ट करनेवाला भयंकर तूफान आया। प्राणियोंके जीवनपर आये संकटको देखकर भगवान् महाविष्णु चिन्तित हो गये। वे सौराष्ट्र देशमें हरिद्रा सरोवरके समीप जाकर भगवतीको प्रसन्न करनेके लिये तप करने लगे। श्रीविद्याने उस सरोवरसे वगलामुखीरूपमें प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिया तथा विध्वंसकारी तूफानका तुरन्त स्तम्भन कर दिया। वगलामुखी महाविद्या भगवान् विष्णुके तेजसे युक्त होनेके कारण वैष्णवी है। मंगलवारयुक्त चतुर्दशीकी अर्धरात्रिमें इनका प्रादुर्भाव हुआ था। इस विद्याका उपयोग दैवी प्रकोपकी शान्ति, धन-धान्यके लिये पौष्टिक कर्म एवं आभिचारिक कर्मके लिये भी होता है। यह भेद केवल प्रधानताके अभिप्रायसे है; अन्यथा इनकी उपासना भोग और मोक्ष दोनोंकी सिद्धिके लिये की जाती है।

यजुर्वेदकी काठकसंहिताके अनुसार दसों दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली, सुन्दर स्वरूपधारिणी 'विष्णुपत्नी' त्रिलोक जगत्की ईश्वरी मानोता कही जाती है। स्तम्भनकारिणी शक्ति व्यक्त और अव्यक्त सभी पदार्थोंकी स्थितिका आधार पृथ्वीरूपा शक्ति है। वगला उसी स्तम्भनशक्तिकी अधिष्ठात्री देवी है। शक्तिरूपा वगलाकी स्तम्भन शक्तिसे द्युलोक वृष्टि प्रदान करता है। उसीसे आदित्यमण्डल ठहरा हुआ है और उसीसे स्वर्ग लोक भी स्तम्भित है। भगवान् श्रीकृष्णने भी गीतामें 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्' कहकर उसी शक्तिका समर्थन किया है। तन्त्रमें वही स्तम्भनशक्ति वगलामुखीके नामसे जानी जाती है।

श्रीवगलामुखीको 'ब्रह्मास्त्र' के नामसे भी जाना जाता है। ऐहिक या पारलौकिक देश अथवा समाजमें दुःखद् अरिष्टोंके दमन और शत्रुओंके शमनमें वगलामुखीके समान कोई मन्त्र नहीं है। चिरकालसे साधक इन्हीं महादेवीका आश्रय लेते आ रहे हैं। इनके बडवामुखी, जातवेदमुखी, उल्कामुखी, ज्वालामुखी तथा बृहद्भानुमुखी पाँच मन्त्रभेद हैं। कुण्डिकातन्त्रमें वगलामुखीके जपके विधानपर विशेष प्रकाश डाला गया है। मुण्डमालातन्त्रमें तो यहाँतक कहा गया है कि इनकी सिद्धिके लिये नक्षत्रादि विचार और कालशोधनकी भी आवश्यकता नहीं है।

वगला महाविद्या ऊर्ध्वाम्नायके अनुसार ही उपास्य है। इस आम्नायमें शक्ति केवल पूज्य मानी जाती है, भोग्य नहीं। श्रीकुलकी सभी महाविद्याओंकी उपासना गुरुके सान्निध्यमें रहकर सतर्कतापूर्वक सफलताकी प्राप्ति होनेतक करते रहना चाहिये। इसमें ब्रह्मचर्यका पालन और बाहर-भीतरकी पवित्रता अनिवार्य है। सर्वप्रथम ब्रह्माजीने वगला महाविद्याकी उपासना की थी। ब्रह्माजीने इस विद्याका उपदेश सनकादिक मुनियोंको किया। सनत्कुमारने देवर्षि नारदको और नारदने सांख्यायन नामक परमहंसको इसका उपदेश किया। सांख्यायनने छत्तीस पटलोंमें उपनिबद्ध वगलातन्त्रकी रचना की। वगलामुखीके दूसरे उपासक भगवान् विष्णु और तीसरे उपासक परशुराम हुए तथा परशुरामने यह विद्या आचार्य द्रोणको बतायी।


परमेश।

९-मातङ्गी

मतङ्ग शिवका नाम है, इनकी शक्ति मातङ्गी है। मातङ्गीके ध्यानमें बताया गया है कि ये श्यामवर्णा हैं और चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किये हुए हैं। भगवती मातङ्गी त्रिनेत्रा, रत्नमय सिंहासनपर आसीन, नीलकमलके समान कान्तिवाली तथा राक्षस-समूहरूप अरण्यको भस्म करनेमें दावानलके समान हैं। इन्होंने अपनी चार भुजाओंमें पाश, अङ्कुश, खेटक और खड्ग धारण किया है। ये असुरोंको मोहित करनेवाली एवं भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाली हैं। गृहस्थ-जीवनको सुखी बनाने, पुरुषार्थ-सिद्धि और वाग्विलासमें पारंगत होनेके लिये मातङ्गीकी साधना श्रेयस्कर है। महाविद्याओंमें ये नवें स्थानपर परिगणित हैं।

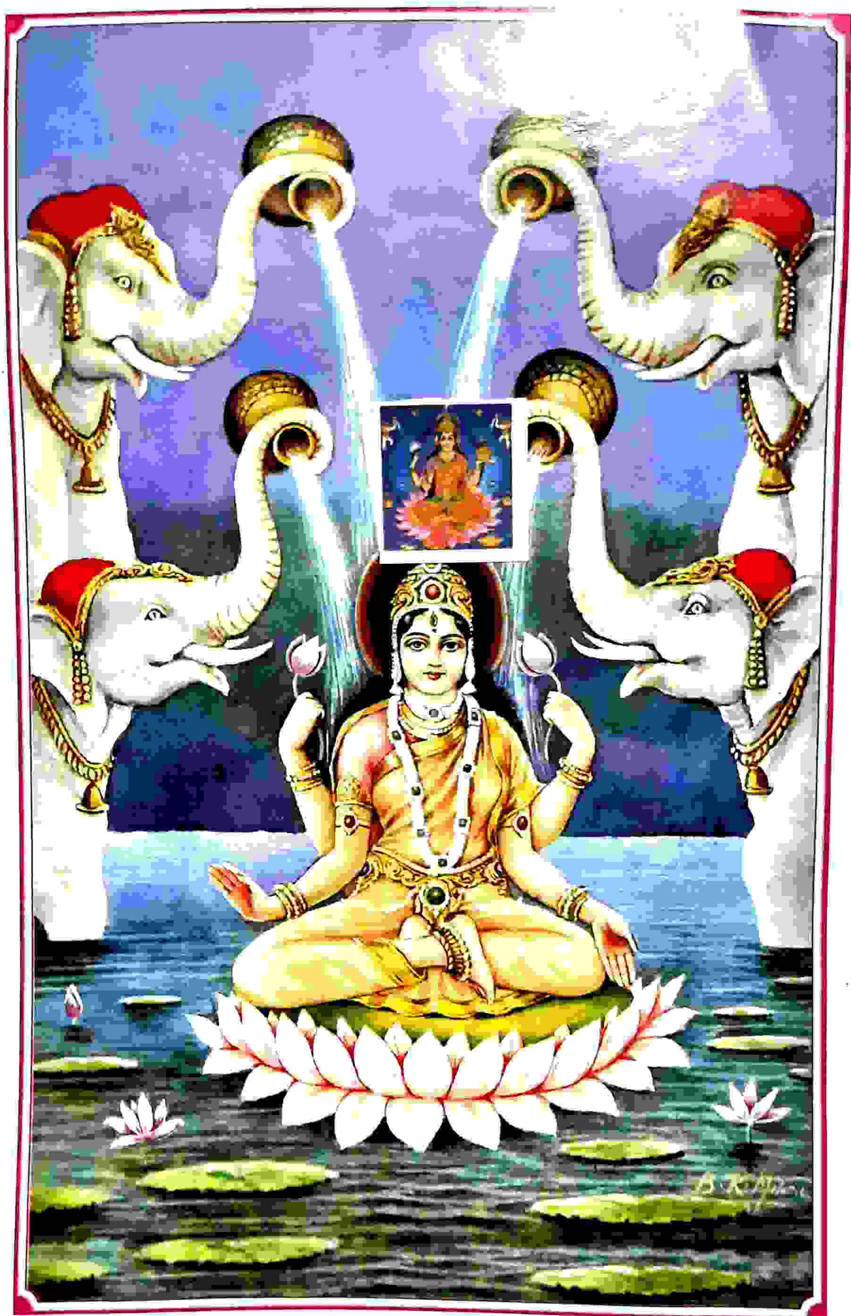
नारदपाञ्चरात्रके बारहवें अध्यायमें शिवको चाण्डाल तथा शिवाको उच्छिष्ट चाण्डाली कहा गया है। इनका ही नाम मातङ्गी है। पुराकालमें मतङ्ग नामक मुनिने नाना वृक्षोंसे परिपूर्ण कदम्ब-वनमें सभी जीवोंको वशमें करनेके लिये भगवती त्रिपुराकी प्रसन्नताहेतु कठोर तपस्या की थी, उस समय त्रिपुराके नेत्रसे उत्पन्न तेजने एक श्यामल नारी-विग्रहका रूप धारण कर लिया। इन्हें राजमातंगिनी कहा गया। यह दक्षिण तथा पश्चिमाम्नायकी देवी हैं। राजमातङ्गी, सुमुखी, वश्यमातङ्गी तथा कर्णमातङ्गी इनके नामान्तर हैं। मातङ्गीके भैरवका नाम मतङ्ग है। ब्रह्मयामल इन्हें मतङ्ग मुनिकी कन्या बताता है।

दशमहाविद्याओंमें मातङ्गीकी उपासना विशेषरूपसे वाक्सिद्धिके लिये की जाती है। पुरश्चर्यार्णवमें कहा गया है—

> अक्षवक्ष्ये महादेवीं मातङ्गीं सर्वसिद्धिदाम्।
> अस्याः सेवनमात्रेण वाक्सिद्धिं लभते ध्रुवम्॥

मातङ्गीके स्थूलरूपात्मक प्रतीक विधानको देखनेसे यह भलीभाँति ज्ञात हो जाता है कि ये पूर्णतया वाग्देवताकी ही मूर्ति हैं। मातङ्गीका श्यामवर्ण परावाक् बिन्दु है। उनका त्रिनयन सूर्य, सोम और अग्नि है। उनकी चार भुजाएँ चार वेद हैं। पाश अविद्या है, अंकुश विद्या है, कर्मराशि दण्ड है। शब्द-स्पर्शादि गुण कृपाण है अर्थात् पञ्चभूतात्मक सृष्टिके प्रतीक हैं। कदम्बवन ब्रह्माण्डका प्रतीक है। योगराजोपनिषद्में ब्रह्मलोकको कदम्बगोलाकार कहा गया है—'कदम्बगोलाकारं ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते'। भगवती मातङ्गीका सिंहासन शिवात्मक महामञ्च या त्रिकोण है। उनकी मूर्ति सूक्ष्मरूपमें यन्त्र तथा पररूपमें भावनामात्र है।

दुर्गासप्तशतीके सातवें अध्यायमें भगवती मातङ्गीके ध्यानका वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे रत्नमय सिंहासनपर बैठकर पढ़ते हुए तोतेका मधुर शब्द सुन रही हैं। उनके शरीरका वर्ण श्याम है। वे अपना एक पैर कमलपर रखी हुई हैं। अपने मस्तकपर अर्धचन्द्र तथा गलेमें कल्हार पुष्पोंकी माला धारण करती हैं। वीणा बजाती हुई भगवती मातङ्गीके अङ्गमें कसी हुई चोली शोभा पा रही है। वे लाल रंगकी साड़ी पहने तथा हाथमें शंखमय पात्र लिये हुए हैं। उनके वदनपर मधुका हलका-हलका प्रभाव जान पड़ता है और ललाटमें विन्दी शोभा पा रही है। इनका वल्लकी धारण करना नादका प्रतीक है। तोतेका पढ़ना 'ह्रीं' वर्णका उच्चारण करना है, जो बीजाक्षरका प्रतीक है। कमल वर्णात्मक सृष्टिका प्रतीक है। शंखपात्र ब्रह्मरन्ध्र तथा मधु अमृतका प्रतीक है। रक्तवस्त्र अग्नि या ज्ञानका प्रतीक है। वाग्देवीके अर्थमें मातङ्गी यदि व्याकरणरूपा हैं तो शुक शिक्षाका प्रतीक है। चार भुजाएँ वेदचतुष्टय हैं। इस प्रकार तान्त्रिकोंकी भगवती मातङ्गी महाविद्या वैदिकोंकी सरस्वती ही हैं। तन्त्रग्रन्थोंमें इनकी उपासनाका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।



१०-कमला

श्रीमद्भागवतके आठवें स्कन्धके आठवें अध्यायमें कमलाके उद्भवकी विस्तृत कथा आयी है। देवताओं एवं असुरोंके द्वारा अमृत-प्राप्तिके उद्देश्यसे किये गये समुद्र-मन्थनके फलस्वरूप इनका प्रादुर्भाव हुआ था। इन्होंने भगवान् विष्णुको पतिरूपमें वरण किया था। महाविद्याओंमें ये दसवें स्थानपर परिगणित हैं। भगवती कमला वैष्णवी शक्ति हैं तथा भगवान् विष्णुकी लीला-सहचरी हैं, अतः इनकी उपासना जगदाधार-शक्तिकी उपासना है। ये एक रूपमें समस्त भौतिक या प्राकृतिक सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी हैं और दूसरे रूपमें सच्चिदानन्दमयी लक्ष्मी हैं; जो भगवान् विष्णुसे अभिन्न हैं। देवता, मानव एवं दानव—सभी इनकी कृपाके बिना पङ्गु हैं। इसलिये आगम और निगम दोनोंमें इनकी उपासना समानरूपसे वर्णित है। सभी देवता, राक्षस, मनुष्य, सिद्ध और गन्धर्व इनकी कृपा-प्रसादके लिये लालायित रहते हैं।

महाविद्या कमलाके ध्यानमें बताया गया है कि इनकी कान्ति सुवर्णके समान है। हिमालयके सदृश श्वेत वर्णके चार हाथी अपने सूँड़में चार सुवर्ण कलश लेकर इन्हें स्नान करा रहे हैं। ये अपनी दो भुजाओंमें वर एवं अभय मुद्रा तथा दो भुजाओंमें दो कमल पुष्प धारण की हैं। इनके सिरपर सुन्दर किरीट तथा तनपर रेशमी परिधान सुशोभित है। ये कमलके सुन्दर आसनपर आसीन हैं।

समृद्धिकी प्रतीक महाविद्या कमलाकी उपासना स्थिर लक्ष्मीकी प्राप्ति तथा नारी-पुत्रादिके सौख्यके लिये की जाती है। कमलाको लक्ष्मी तथा षोडशी भी कहा जाता है। भार्गवोंके द्वारा पूजित होनेके कारण इनका एक नाम भार्गवी है। इनकी कृपासे पृथ्वीपतित्व तथा पुरुषोत्तमत्व दोनोंकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान् आद्य शंकराचार्यके द्वारा विरचित कनकधारा स्तोत्र और श्रीसूक्तका पाठ, कमलगट्टोंकी मालापर श्रीमन्त्रका जप, बिल्वपत्र तथा बिल्वफलके हवनसे कमलाकी विशेष कृपा प्राप्त होती है। स्वतन्त्रतन्त्रमें कोलासुरके वधके लिये इनका प्रादुर्भाव होना बताया गया है। वाराहीतन्त्रके अनुसार प्राचीनकालमें ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवद्वारा पूजित होनेके कारण कमलाका एक नाम त्रिपुरा प्रसिद्ध हुआ। कालिकापुराणमें कहा गया है कि त्रिपुर शिवकी भार्या होनेसे इन्हें त्रिपुरा कहा जाता है। शिव अपनी इच्छासे त्रिधा हो गये। उनका ऊर्ध्व भाग गौरवर्ण, चार भुजावाला, चतुर्मुख ब्रह्मरूप कहलाया। मध्य भाग नीलवर्ण, एकमुख और चतुर्भुज विष्णु कहलाया तथा अधोभाग स्फटिक वर्ण, पञ्चमुख और चतुर्भुज शिव कहलाया। इन तीनों शरीरोंके योगसे शिव त्रिपुर और उनकी शक्ति त्रिपुरा कही जाती है। चिन्तामणि गृहमें इनका निवास है। भैरवयामल तथा शक्तिलहरीमें इनके रूप तथा पूजा-विधानका विस्तृत वर्णन किया गया है। इनकी उपासनासे समस्त सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं।

पुरुषसूक्तमें 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या' कहकर कमलाको परम पुरुष भगवान् विष्णुकी पत्नी बतलाया गया है। अश्व, रथ, हस्तिके साथ उनका सम्बन्ध राज्य-वैभवका सूचक है, पद्मस्थित होने तथा पद्मवर्णा होनेका भी संकेत श्रुतिमें है। भगवच्छक्ति कमलाके पाँच कार्य हैं—तिरोभाव, सृष्टि, स्थिति, संहार और अनुग्रह। भगवती कमला स्वयं कहती हैं कि नित्य निर्दोष परमात्मा नारायणके सब कार्य मैं स्वयं करती हूँ। इस प्रकार कालीसे लेकर कमलातक दशमहाविद्याएँ सृष्टि और व्यष्टि, गति, स्थिति, विस्तार, भरण-पोषण, नियन्त्रण, जन्म-मरण, उन्नति-अवनति, बन्धन तथा मोक्षकी अवस्थाओंकी प्रतीक हैं। ये अनेक होते हुए भी वस्तुतः परमात्माकी एक ही शक्ति हैं।



मुण्डमालातन्त्रोक्त महाविद्यास्तोत्रम्

ॐ नमस्ते चण्डिके चण्डि चण्डमुण्डविनाशिनि।
नमस्ते कालिके कालमहाभयविनाशिनि॥
शिवे रक्ष जगद्धात्रि प्रसीद हरवल्लभे।
प्रणमामि जगद्धात्रीं जगत्पालनकारिणीम्॥
जगत् क्षोभकरीं विद्यां जगत्सृष्टिविधायिनीम्।
करालां विकटां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम्॥
हरार्चितां हराराध्यां नमामि हरवल्लभाम्।
गौरीं गुरुप्रियां गौरवर्णालङ्कारभूषिताम्॥
हरिप्रियां महामायां नमामि ब्रह्मपूजिताम्।
सिद्धां सिद्धेश्वरीं सिद्धविद्याधरगणैर्युताम्॥
मन्त्रसिद्धिप्रदां योनिसिद्धिदां लिङ्गशोभिताम्।
प्रणमामि महामायां दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्॥
उग्रामुग्रमयीमुग्रतारामुग्रगणैर्युताम्।
नीलां नीलघनश्यामां नमामि नीलसुन्दरीम्॥
श्यामाङ्गीं श्यामघटितां श्यामवर्णविभूषिताम्।
प्रणमामि जगद्धात्रीं गौरीं सर्वार्थसाधिनीम्॥
विश्वेश्वरीं महाघोरां विकटां घोरनादिनीम्।
आद्यामाद्यगुरोराद्यामाद्यनाथप्रपूजिताम्॥
श्री दुर्गां धनदामन्नपूर्णां पद्मां सुरेश्वरीम्।
प्रणमामि जगद्धात्रीं चन्द्रशेखरवल्लभाम्॥
त्रिपुरां सुन्दरीं बालामबलागणभूषिताम्।
शिवदूतीं शिवाराध्यां शिवध्येयां सनातनीम्॥
सुन्दरीं तारिणीं सर्वशिवागणविभूषिताम्।
नारायणीं विष्णुपूज्यां ब्रह्मविष्णुहरप्रियाम्॥
सर्वसिद्धिप्रदां नित्यामनित्यां गुणवर्जिताम्।
सगुणां निर्गुणां ध्येयामर्चितां सर्वसिद्धिदाम्॥
विद्यां सिद्धिप्रदां विद्यां महाविद्यां महेश्वरीम्।
महेशभक्तां माहेशीं महाकालप्रपूजिताम्॥
प्रणमामि जगद्धात्रीं शुम्भासुरविमर्दिनीम्।
रक्तप्रियां रक्तवर्णां रक्तबीजविमर्दिनीम्॥
भैरवीं भुवनां देवीं लोलजिह्वां सुरेश्वरीम्।
चतुर्भुजां दशभुजामष्टादशभुजां शुभाम्॥
त्रिपुरेशीं विश्वनाथप्रियां विश्वेश्वरीं शिवाम्।
अट्टहासामट्टहासप्रियां धूम्रविनाशिनीम्॥
कमलां छिन्नभालाञ्च मातंगीं सुरसुन्दरीम्।
षोड्शीं विजयां भीमां धूमाञ्च वगलामुखीम्॥
सर्वसिद्धिप्रदां सर्वविद्यामन्त्रविशोधिनीम्।
प्रणमामि जगत्तारां साराञ्च मन्त्रसिद्धये॥
इत्येवञ्च वरारोहे, स्तोत्रं सिद्धिकरं परम्।
पठित्वा मोक्षमाप्नोति सत्यं वै गिरिनन्दिनि॥